निष्पक्षता के चश्मे से

गुरबचन सिंह एवं निशा बुटोलिया

आकलन! जब हम बच्चे थे तो आकलन का मतलब था परीक्षा जो तीन/छह महीनों और फिर सत्र के अन्त में आती थी। हमें पता होता था कि हम परीक्षा के दौरान खेल नहीं सकते थे और पिछले तीन महीनों में जो कुछ भी पढ़ाया गया होता था वह सब हमें याद करना पड़ता था। हमें पता रहता था कि एक बार परीक्षाएँ पूरी हो जाएँ, तो हम फिर से एक उन्मुक्त पंछी बन सकते थे! हमें आज भी उस आनन्द की याद है कि जो आखिरी परीक्षा का अन्तिम पर्चा होने के बाद हम महसूस करते थे। हम नाचते हुए, स्याही से 'होली' खेलते हुए और अपने प्रश्नपत्रों के हवाई जहाज बनाते हुए घर लौटा करते थे!

परीक्षा को सीखने के अन्त की तरह देखा जाता है - जो भी 'सीखा' गया होता था हम उसे मजे में भूल सकते थे। यदि परीक्षा दे देने के बाद हम सब कुछ भूल भी जाएँ तो उससे क्या फर्क पड़ता है? स्कूलों की पढ़ाई का असली जिन्दगी से कोई वास्ता ही नहीं है। बस मतलब होता है परीक्षा में किए गए प्रदर्शन का।

परीक्षाएँ बच्चों के मन में एक प्रकार की व्यग्रता, भय और सदमे के भाव पैदा कर देती हैं, जो हमें लगता है कि औपचारिक शिक्षा के पूरे दौर में और स्नातक व स्नातकोत्तर स्तरों पर भी हममें से अधिकांश ने अनुभव किया है। परीक्षा से जुड़े तनाव या खराब प्रदर्शन की वजह से विद्यार्थियों द्वारा आत्महत्या कर लिए जाने के कई उदाहरण हमारे सामने हैं। 2009 में भारत भर में 2010 विद्यार्थियों ने परीक्षा में असफलताओं के भय से आत्महत्याएँ कीं (http://ncrb.nic.in/CD-ADSI2009/suicides-09.pdf)।

इससे बुरा और क्या हो सकता है?

वे विद्यार्थी, जो परीक्षाओं की वजह से हमेशा ही चिन्तित रहते हैं और परिणामों से भयभीत रहते हैं, शायद ही किसी चीज को बस मजे के लिए करने/सीखने का मतलब समझ सकते हैं, और फिर भविष्य के समाजों के लिए इसके परोक्ष परिणामों के बारे में हम खुद ही सोच सकते हैं। ये विद्यार्थी किस प्रकार का समाज बनाएँगे?

वे बच्चे जो फेल हो जाते हैं, स्कूल छोड़ देते हैं। यह केवल एक बार फेल हो जाने की बात नहीं है, बल्कि बच्चों पर बार-बार 'असफल' (या गधे या इसी प्रकार के अन्य ठप्पे) होने का ठप्पा लगा देने का मुद्दा है।

वह बच्चा जो 'अच्छा प्रदर्शन' नहीं करता, उसे गधे वाली मेज पर बैठना पड़ता है

बच्चे इसका यह अर्थ निकाल लेते हैं कि 'मैं स्कूल में कुछ भी अच्छा नहीं कर सकता।' बच्चे असफल हो जाते हैं, इसलिए नहीं कि वे असमर्थ होते हैं बल्कि इसलिए क्योंकि स्कूल में जो कुछ भी होता है उसमें उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती। धीरे-धीरे वे अपना आत्मविश्वास खोते जाते हैं।

शिक्षण तो हो जाता है, पर सीखना नहीं हो पाता। सुबह की सभा से शुरू होने वाली पूरी प्रक्रिया कभी-कभी विद्यार्थियों के लिए इतनी विरक्ति भरी हो जाती है कि वे शिक्षकों की 'अवज्ञा' करते हैं और अपनी बातों में मगन

रहते हैं, या ऐसी गतिविधियाँ करते रहते हैं जो स्कूल प्रशासन के लिए अस्वीकार्य होती हैं। अन्ततः ऐसे बच्चों को स्कूली प्रक्रियाओं से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

'अवज्ञाकारी' बच्चों की पृथक पंक्ति। (उन्हें बहिष्कृत करने का एक उदाहरण)

(शिक्षक कार्ल मार्क्स के बारे में बात कर रहे हैं, कक्षा 1 से 4 के विद्यार्थी श्रोता हैं। चित्र में हम देख रहे हैं कि ऐसे विद्यार्थियों की एक पृथक पंक्ति भी है जो शिक्षक की बात नहीं सुन रहे थे।)

परीक्षाओं के दौरान विद्यार्थियों द्वारा गलत तरीकों का सहारा लिया जाना इस बात का सूचक है कि वे परीक्षा को किस रूप में लेते हैं - ऐसा मौका जहाँ मुझे अच्छा प्रदर्शन करना ही है, मेरे लिए कोई और विकल्प नहीं है और यदि है भी तो वह कुछ न कुछ कलंक के साथ ही मिलता है। स्कूल और बृहद समाज असफलता को विद्यार्थी द्वारा जीवन में कुछ भी करने में अक्षम होने के संकेत के रूप में देखते हैं। एक तरह की परीक्षा केवल एक बार लेकर, हम बच्चों के आत्मसम्मान को तहस-नहस करने का जोखिम उठाते हैं; खासतौर पर उन बच्चों के मामले में जो किशोरावस्था में होते हैं और जो सन्देह और निरादर को सहन नहीं कर पाते।

आज हमारे पास सतत और व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) है। हमें यह, खासतौर पर बच्चों के लिए, काफी सार्थक दिखाई देता है। सी.सी.ई. के दो प्रकार के लाभ हैं - पहला, इसके पीछे के 'शैक्षणिक दृष्टिकोण' से सम्बन्धित है। आकलन, सीखने की प्रक्रिया को सुचारु बनाने के लिए किया जाता है। सीखने को ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जहाँ बच्चा भी लगातार इस प्रक्रिया में शामिल रहता है। वह अपने सन्दर्भ और समझ को सामने रखकर उनकी तुलना में तथ्यों/प्रक्रियाओं का आकलन करके अपने लिए नए अर्थ बनाता है। शिक्षक सहायक की भूमिका निभाता है जो किसी बच्चे के साथ सहयोग करके उसके विकास के वर्तमान चरण का आकलन करता है और उस बच्चे के सीखने का तथा उसकी सफलता का वातावरण निर्मित करता है। आकलन सिर्फ बच्चे का ही नहीं होता, बल्कि बच्चे के सन्दर्भ के मापदण्ड के अनुसार शिक्षा से जुड़े संसाधनों, शिक्षण प्रक्रियाओं और कक्षा के समग्र वातावरण का भी होता है। कक्षा का ऐसी जीवन्त जगह होना जरूरी है जो सब लोगों की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करती हो।

सी.सी.ई. का जो दूसरा लाभ, जिसकी हम यहाँ विस्तार से चर्चा करने वाले हैं, 'निष्पक्षता' से सम्बन्धित है। अब बच्चे चीजों को याद करने के बोझ से तथा परीक्षा में उसे 'ज्यों का त्यों' लिखकर आने के तनाव से, 'बुद्धू' जैसे ठप्पों के लग जाने के डरों से, और 'परीक्षा के दिनों' के तनाव से मुक्त हैं। हम शिक्षकों के पूर्वाग्रहों - यदि अमुक लड़का पढ़ाई में अच्छा करता है, तो वह अच्छा मॉनीटर (कक्षा नायक) भी होगा और अच्छा धावक भी होगा - पर आधारित होने के बजाय किसी क्षेत्र विशेष में उनके प्रदर्शन के आधार पर बच्चों के लिए बहुत से मौके देखते हैं। हम सोच में पड़ जाते हैं कि वे बच्चे जो अच्छे अंक लाए, उन्होंने उनके शिक्षकों द्वारा उनमें दिखाए गए विश्वास की वजह से लगातार 'अच्छा प्रदर्शन' किया होगा और वे बच्चे जो कम अंक लाए इसलिए बार-बार असफल हुए क्योंकि उनको यह भान हो गया कि उनके शिक्षक का उनमें बिलकुल भी भरोसा नहीं था और कक्षा में उनकी कोई जगह नहीं थी। यहीं पर हम सी.सी.ई. के लाभों/प्रभाव-क्षमता के प्रति आश्वस्त हैं। अब प्रत्येक विद्यार्थी का समग्रता के साथ आकलन करना होगा और सफलता के मौके शिक्षक द्वारा निर्मित किए जाना होंगे। कोई भी विद्यार्थी परीक्षाओं में 'अच्छा प्रदर्शन' न करने के कारण खुद को बहिष्कृत महसूस नहीं करेगा/करेगी, बल्कि, सभी को यह सन्तोष होगा कि वह 'किसी ऐसी चीज' में अच्छा/अच्छी है जो अपने-आप में उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

यदि हम कक्षा की प्रक्रियाओं को निष्पक्षता के चश्मे से देखें, तो हमें निराशा होती है। स्कूल में क्या पढ़ाया जाता है और कौन-सी गतिविधियाँ उपलब्ध होती हैं, इसके बारे में आमतौर पर बच्चों की कोई राय नहीं होती। कुछ बच्चों के लिए, स्कूल में होने वाली प्रक्रियाएँ अपेक्षाकृत सुगम होती हैं, क्योंकि जिस तरह का व्यवहार उन्हें घर पर मिलता है वह स्कूली संस्कृति से काफी मिलता-जुलता होता है। पर, यदि हम आदिवासी इलाकों, सुविधाहीन पृष्ठभूमियों के बच्चों के बारे में सोचें, तो पाते हैं कि वे तो पूरी तरह से अलग-थलग ही रह जाते हैं। जो भाषा वे घर में बोलते हैं उसकी स्कूल में कोई जगह नहीं होती। अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए जो गतिविधियाँ वे करते हैं, उनका उनकी किताबों में कोई जिक्र नहीं होता। वे जो चीजें खाते हैं उनका कक्षा में प्रस्तुत की जाने वाली संतुलित आहार की तस्वीर से दूर-दूर तक भी नाता नहीं होता। उनके स्कूली बिरादरी के लोग उनसे दूरी बनाकर रखते हैं क्योंकि उनके कपड़े गन्दे होते हैं, इत्यादि। फिर इन बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वे नियत पाठ्यक्रम के आधार पर अच्छा प्रदर्शन करें। इस आकलन की प्रक्रिया को किस प्रकार तर्कसंगत ठहराया जा सकता है?

सी.सी.ई. लोगों को बच्चों पर ठप्पा लगाने से रोकने में मदद करता है। हर बच्चा एक अलग व्यक्ति होता है और उसमें पहचाने जाने वाले अनेक मजबूत पक्ष होते हैं। एक प्रश्नपत्र बच्चे की सभी क्षमताओं का आकलन नहीं कर सकता। बच्चे का विकास और उसके सीखने को किसी प्रमाणपत्र की जरूरत नहीं होती, कम से कम प्राथमिक स्तर पर तो नहीं ही होती। हाँ, व्यवस्था को प्रशासनिक निर्णय लेने के लिए इसकी जरूरत अवश्य होती है, और छोटे बच्चों पर 'उत्तीर्ण/ अनुत्तीर्ण' के ठप्पे लगा दिए जाते हैं। सी.सी.ई. का मतलब बार-बार होने वाली परीक्षाएँ और टैस्ट नहीं होते।

सी.सी.ई. केवल परीक्षाओं और मूल्यांकन पर ही केन्द्रित नहीं होता। यह मूल्यांकन के तथा 'सीखने की प्रक्रियाओं' एवं 'बच्चे' को जिस प्रकार देखा जाता है उसके पूरे परिप्रेक्ष्य को बदल कर रख देता है। सी.सी.ई. को लागू करने का मतलब होता है-

- हर बच्चे को एक बिलकुल अलग व्यक्ति के रूप में देखते हुए यह महसूस करना कि उन सभी का अलग-अलग व्यक्तित्व होता है तथा उनकी अपनी बुनियादी प्रकृति - कुछ संकोची होते हैं, कुछ अन्तर्मुखी, कुछ वाचाल होते हैं - होती है। यहाँ संकोची या बहिर्मुखी होना व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है। इसका जीवन की सफलता या असफलता से या समाज के लिए उपयोगिता से कोई सरोकार नहीं होता।

- व्यक्तिगत खूबियों को पहचानने की क्षमता। शिक्षकों के लिए उनकी कक्षा के बच्चों को समझना सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के लिए और बच्चों के विकास और सीखने के लिए बहुत जरूरी है। एक बार की और एक प्रकार (पेपर और पेंसिल वाली) की परीक्षा यहाँ उपयोगी नहीं होती। हमें जरूरत है बच्चे की क्षमताओं को समझने के लिए एक समग्र पद्धति की। बच्चे की पृष्ठभूमि, परिस्थिति, विद्यार्थी के रूप में उसके मजबूत पक्षों आदि को समझना।

- बच्चे के प्रदर्शन में हुए विकास की उसके खुद के ही पिछले प्रदर्शन के साथ तुलना की जाती है। हर बच्चा अपना परिवेश लिए हुए आता है और उसके घर पर विशेष परिस्थितियाँ होती हैं। इसके परिणामस्वरूप समान क्षमताओं वाले बच्चे अलग-अलग तरह का प्रदर्शन करते हैं। इसलिए हर बच्चे की खुद से तुलना करना उसके सीखने का आकलन करने का अच्छा तरीका है।

- प्रदर्शन को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। उसमें प्रत्येक बच्चा अलग-अलग बिन्दुओं पर होता है।

- बच्चा कहाँ है, इस बात को आँकने के लिए और उसे सीखने के वैयक्तिक मौके उपलब्ध करवाने के लिए आकलन करना। आकलन को सीखने की प्रक्रिया के अभिन्न हिस्से के रूप में देखा जाता है।

- सीखने वालों के प्रति संवेदनशील रहना। बच्चे की पृष्ठभूमि के प्रति संवेदनशील रहना, उसकी बातों को बहुत ध्यानपूर्वक सुनना, उसके प्रति भरोसा और सम्मान दिखाना - ये सीखने और प्रदर्शन करने के लिए बहुत जरूरी शर्तें होती हैं।

सी.सी.ई. की ये प्रक्रियाएँ बच्चों को स्कूल लाने में मदद करेंगी। सभी के लिए मौका मिलना - किसी को भी इसलिए इस प्रक्रिया से बाहर नहीं रखा जाएगा क्योंकि वे अपने घर पर कोई खास भाषा बोलते हैं, या उनकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है।

इससे गुणवत्ता का मुद्दा भी हल हो जाएगा - चूँकि स्कूल आने वाले बच्चों की संख्या और स्कूल में बने रहने वाले बच्चों की संख्या बढ़ेगी, तो गुणवत्ता का मानदण्ड भी अपने आप ऊँचा करना होगा। और इससे पूरी सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पर भी और सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

यह चर्चा सी.सी.ई. को कोई जादू की छड़ी की तरह दिखाने के लिए नहीं है। यहाँ उद्देश्य बच्चे के बारे में, उसके विकास और सीखने के बारे में हमारी समझ के प्रतिमानों में हुए बदलाव को देखना है। इस पूरे मुद्दे को निष्पक्षता के चश्मे से देखने से हमें सतत और व्यापक मूल्यांकन के महत्त्व को तार्किक ढंग से समझाने में मदद मिल सकती है।

स्कूली शिक्षा को बच्चों पर लगा दिए जाने वाले ठप्पों और असफलताओं या परीक्षाओं में उनके हल्के प्रदर्शन के प्रभाव के प्रति संवेदनशील होने की जरूरत है। स्कूली शिक्षा के लक्ष्य को समझना - यह सिर्फ बच्चों को अगली कक्षा में पहुँचाते जाना या उन्हें स्कूल में बनाए रखना ही नहीं है। सामान्यत: स्कूल उन बच्चों पर ज्यादा ध्यान देते हैं जिन्होंने अच्छी वरीयता प्राप्त की है, लेकिन उन बच्चों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता जिनका प्रदर्शन अच्छा नहीं होता - उनके बारे में कोई नहीं सोचता।

हमें आशा है कि हम ऐसी व्यवस्था बनाएँगे जो सीखने पर ध्यान देती हो, न कि बच्चों की छँटनी करने पर।

(हम अपने साथियों, जितेन्द्र शर्मा और देबाशीष नंदी को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने हमें इस लेख को लिखने के लिए उपयोगी सहयोग दिया।)

गुरबचन सिंह *भोपाल में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ काम करते हैं। मध्य प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा और शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में पिछले पैंतीस वर्षों से उनका नाम जाना-पहचाना है। उन्होंने मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग की पत्रिकाओं 'पलाश' और 'गुल्लक' का सम्पादन किया है। वे बाल साहित्य केन्द्र, टीकमगढ़ के साथ पिछले करीब बीस सालों से जुड़े हैं। उनसे gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

निशा *वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बंगलौर में भाषा दल की सदस्य हैं। वे कई सालों तक प्राथमिक स्कूल शिक्षिका और अकादमिक समन्वयक थीं। उन्होंने लम्बे समय तक थीम-आधारित सीखने सिखाने की प्रक्रियाओं पर काम किया है। उनकी रुचि के क्षेत्र हैं पाठ्यक्रम विकसित करना, सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को समझना और विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के साथ मिलकर काम करना। उनसे nisha@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।* ***अनुवाद*** *: भरत त्रिपाठी*